यज्ञोपवीत या जनेऊ

[श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, एम० ए०]

वैदिक सोलह संस्कारों में दो को सब से अधिक गौरवान्वित समझा जाता है, एक यज्ञोपवीत और दूसरा विवाह। रहे अन्य! उनका मान्य तो शायद विरले ही घरों में होगा। परन्तु आजकल लोग इन दो संस्कारों से भी तंग आगये हैं। विवाह के बंधनों से मुक्त होने का घोर प्रयत्न पाश्चात्य देशों तथा उनके अंध-विश्वासी अनुयायी पूर्व देशीय युवकों में भी हो रहा है। फिर विचारा यज्ञोपवीत किस गिनती में है।

कुछ समय पूर्व यज्ञोपवीत ऊंच और नीच जातियों का भेदक चिह्न समझा जाता था और बहुत सी नीच समझी जाने वाली जातियां बड़े चाव से अपना यज्ञोपवीत संस्कार कराके उच्च जातियों में मिलने की कोशिश किया करती थीं। परन्तु कालान्तर में भाव बदल गया और जिन जातियों ने यवनों के अत्याचार के समय में अपने रक्त से अपने जनेऊ की रक्षा की थी उन्हीं की संतान तीन धागों का बोझ कन्धों पर न सहार सकी और उसे व्यर्थ का ढौंग समझ कर तोड़ने लगी।

इस युग के प्रसिद्ध बंगाली विद्वान् श्री बाबू केशवचन्द सेन ने सब से पहले जनेऊ तोड़ फेंकने का श्रेय अपने सिर लिया था और उनके अनुकरण रूप में उनके नव-विधान धर्मानुयायी यज्ञोपवीत को उसी घृणा की दृष्टि से देखने लगे थे जिससे चोरी आदि अन्य कर्म देखे जाते हैं। कोई यज्ञोपवीत धारी ब्रह्मसमाज की वेदी पर चढ़ नहीं सकता था।

कुछ दिनों तक यह केवल ब्रह्मसमाज की ही विशेषता रही। शनैः २ जनेऊ तोड़कों का मण्डल बढ़ा। यहां तक कि आज कल कभी कभी कान में यह आश्चर्य-जनक भनक भी पड़ जाती है कि अमुक आर्य्य-सामाजिक विद्वान् यज्ञोपवीत पर विश्वास नहीं रखते और उसे ढौंग समझते हैं।

जो वैदिक धर्मी नहीं उनके विषय में तो सुगमता से समझ में आ जाता है कि उनकी यज्ञोपवीत पर श्रद्धा न हो। परन्तु जिस वेदाध्ययन का अधिकार ही मनुष्य को यज्ञोपवीत संस्कार से संस्कृत होने के पश्चात् प्राप्त होता है उसको वेदानुकूल न मानना अवश्य आश्चर्य जनक प्रतीत होता है।

यज्ञोपवीत संस्कार के विषय में निम्न प्रश्न हैं :—

(१) क्या वेदों में जनेऊ धारण करना लिखा है ?

(२) क्या वेदों के पीछे के वैदिक ग्रन्थों में यज्ञोपवीत का वर्णन है ?

(३) यज्ञोपवीत का क्या उपयोग है ?

(४) यज्ञोपवीत धारण न करने में क्या हानि है ?

(५) यज्ञोपवीत किसको धारण करना चाहिये ?

(६) क्या यज्ञोपवीत के समान कोई संस्कार अन्य धर्मों में भी हैं ? और उनकी जनेऊ से किस प्रकार तुलना की जा सकती है?

कुछ लोगों का कहना है कि वेदों में जनेऊ का वर्णन नहीं है। इस लिये सब से पहले हम इसी को लेते हैं।

(१)

स सूर्यस्य रश्मिभिः परिव्यत तन्तुं तन्वानस्त्रिवृतं यथा विदे। नयन्नृतस्य प्रशिषो नवीयसीः पतिर्जनीनामुप याति निष्कृतम् ॥

(ऋग्वेद मण्डल ९, सूक्त ८६, मंत्र ३२)

यहां उस ब्रह्मचारी का वर्णन है जो गुरुकुल से निकल कर संसार में विद्या का प्रचार करता है :—

(स) वह ब्रह्मचारी (यथा विदे) ज्ञान पूर्वक (त्रिवृतं तन्तुं तन्वानः) तीन धागों का जनेऊ धारण करता हुआ (सूर्य्यस्य रश्मिभिः परिव्यत) सूर्य्य की किरणों के समान प्रकाश से प्रकाशित होता है। (ऋतस्य प्रशिषः नवीयसीः नयन्) ईश्वर के सृष्टि-नियम की प्रशंसा युक्त नई नई बातों को फैलाता हुआ (जनीनाम् पतिः) मनुष्यों का नेता (निष्कृतं उप याति) स्वतंत्र विचरता है। इस मंत्र में स्पष्ट वर्णन है कि ब्रह्मतेज धारी ब्रह्मचारी तीन धागों का जनेऊ धारण करता है।

(२)

यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः। तमाहुतं नशीमहि ॥

ऋग्वेद १०।५७।२

(यः) जो (यज्ञस्य) यज्ञ को (प्रसाधनः) पूरा करने वाला (तन्तुः) सूत्र (देवेषु) विद्वानों में (आततः) फैला हुआ अर्थात् प्रचरित है (तम्) उस (आहुतं) पूज्य सूत्र को (नशीमहि) हम भी प्राप्त होवें।

इस मंत्र में बताया गया है कि विद्वानों में जनेऊ का प्रचार है, बिना जनेऊ के यज्ञ पूरा नहीं होता। (इसी लिये इसको यज्ञोपवीत कहते हैं)। यह सूत्र पूज्य है। इसको अवश्य धारण करना चाहिये।

(३)

युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥

ऋग्वेद ३।८।४

(युवा) नौजवान (सुवासाः) अच्छे वस्त्र पहने हुये (परिवीतः) कन्धे के चारों ओर जनेऊ धारण किये हुये ब्रह्मचारी (आगात्) आया है। (स) वह (जायमानः) प्रसिद्ध होकर (श्रेयान्) सब संसार का हित करने वाला (भवित) होता है ! (धीरासः) धीर (स्वाध्यः) अच्छी तरह ध्यान करने वाले (मनसा देवयन्तः) मन से ईश्वर की कामना करने वाले (कवयः) विद्वान लोग (तं) ऐसे विद्वान को (उन्नयन्ति) आगे बढ़ाते हैं ।।

जिस प्रकार ऊपर के दो मंत्रों में विद्वान् ब्रह्मचारी को सूत्रधारी बताया गया है उसी प्रकार इस मंत्र में उस को "परिवीत" अर्थात् यज्ञोपवीत से युक्त बताया गया है। 'परिवीत' का अर्थ है 'परि'=चारों ओर, + 'वीत'=आवेष्टित या लपेटा हुआ। यहां जनेऊ के कंधे के चारों ओर पड़े होने की ओर संकेत है।

(४)

तस्मात्* प्राचीनोपवीतस्तिष्ठे प्रजापतेनु मा बुध्यस्वेति अन्वेनं प्रजा अनु प्रजापतिर्बुध्यते य एवं वेद ॥

(अथर्व वेद ३ । १ । २४)

(तस्मात्) इस लिये (प्राचीन उपवीतः) सामने जनेऊ धारण करके (तिष्ठे) खड़ा हो और प्रार्थना कर कि (प्रजापते) हे ईश्वर (मा) मुझ पर (अनु बुध्यस्व) कृपा कीजिये। (एवं) ऐसे पुरुष पर (प्रजा) लोग और (प्रजापति) ईश्वर (अनु बुध्यते) कृपा करते हैं (य एवं वेद) जो इस रहस्य को समझता है।

इस मंत्र में उपवीत शब्द आया है। तात्पर्य यह है कि जो विधि पूर्वक जनेऊ धारण करके विद्या की प्राप्ति और ईश्वर की प्रार्थना करता है उस पर ईश्वर और मनुष्य सभी प्रसन्नता प्रकट करते हैं।

(५)

एतावद्रूपं यज्ञस्य यद्
देवैर्ब्रह्मणा कृतम् ।
तदेतत् सर्वमाप्नोति यज्ञे
सौत्रामणी सुते ॥

(यजुर्वेद १९ । ३१)

(यज्ञस्य) यज्ञ का (एतावद् रूपं) इतना रूप (यद्) जितना (ब्रह्मणा) ईश्वर ने (देवैः) विद्वानों द्वारा (कृतं) सम्पादित कराया। (तत् एतत् सर्वम्) वह सब (सौत्रामणी सुते यज्ञे) जनेऊ धारण करने के निमित यज्ञ में (आप्नोति) प्राप्त होता है। 'सौत्रामणी' शब्द का अर्थ ऋषि दयानन्द कृत भाष्य में इस प्रकार है :—

सूत्राणि यज्ञोपवीतादीनि मणिना ग्रन्थिना युक्तानि ध्रियन्ते यस्मिंस्तस्मिन्।

* प्राचीनावीती भूत्वा दक्षिणासीनः···(शतपथ २ । ६ । १ । ८)

अर्थात् जनेऊ आदि धागे की गांठ बनाकर जिसमें पहनी जाती है वह यज्ञ।

इसी मंत्र का अन्वय करते हुये ऋषि के भाष्य में इस प्रकार लिखा है :—

यो मनुष्यो यद् देवैर्ब्रह्मणा यज्ञस्यैतावद् रूपं कृतं तदेतत् सर्वं सौत्रामणी सुते यज्ञ आप्नोति स द्विजत्वारम्भं करोति।

अर्थात् सौत्रामणी यज्ञ में मनुष्य द्विज बनता है। इससे स्पष्ट है कि सौत्रामणी यज्ञ यज्ञोपवीत संस्कार ही तो है। वैदिक शब्द-माला में सूत्र शब्द यज्ञोपवीत का वाचक होता ही है। जैसा 'शिखा और सूत्र' के वाक्यांश से प्रकट होता है।

इन ऊपर के मंत्रों से स्पष्ट होता है कि यज्ञोपवीत या जनेऊ का वेदों में विधान न बताना बड़ी भूल है। हमने ऊपर अथर्व ३।१।२४ वाला जो मंत्र दिया है उसमें "प्राचीनोपवीत" शब्द आया है। शतपथ ब्राह्मण में "प्राचीनोपवीती" और "यज्ञोपवीती" शब्द बहुत आया है। उदाहरण के लिये शतपथ काण्ड २ के ६ अध्याय का पहला ब्राह्मण देखिये। इसमें पितृ-यज्ञ का वर्णन है। इसमें दो प्रकार के कृत्य हैं। कुछ क्रियाओं में जनेऊ सामने करने की प्रथा थी। उसी को 'प्राचीनोपवीती' कहते थे। यदि जनेऊ या उपवीत का विधान वेद और ब्राह्मणों में न होता तो 'प्राचीनोपवीती' शब्द का क्या अर्थ होता!

गोपथ ब्राह्मण में गायत्री मंत्र के द्वितीय पाद की व्याख्या करते हुये 'व्रत' की महिमा इस प्रकार बताई गई है :—

व्रतेन वै ब्राह्मणः संशितो भवति अशून्यों भवति अविच्छिन्नो भवति। अविच्छिन्नोऽस्य तन्तुः। अविच्छिन्नं जीवनं भवति॥

(गोपथ पूर्व भाग प्र० १। क० ३५)

अर्थात् व्रत से ब्राह्मण ज्ञानी हो जाता है, भरपूर हो जाता है। अखण्ड होजाता है। उस का जनेऊ खण्डित नहीं होता। उसका जीवन खण्डित नहीं होता।

यहां कहा गया है कि जो ब्राह्मण व्रत का पालन करता है उसी का 'तन्तु' अर्थात् जनेऊ (Sacred thread) खण्डित नहीं होता। उसीका जीवन पूर्ण समझना चाहिये। जनेऊ की महिमा कान पर चढ़ाने से नहीं किन्तु व्रत के पालने से है। यही बात यहाँ बताई गई है। इसी ब्राह्मण के प्रपा० २ की चौथी कण्डिका में है:—

उपनयेतैनम्। (गो० पूर्व० २।४)

अर्थात् आचार्य्य को चाहिये कि वह ब्रह्मचारी का उपनयन संस्कार करे।

मनु में भी तो यही आशय है। देखिये:—

उपनीयतु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः। संकल्पं सरहस्यं च तमाचार्य्यं प्रचक्षेते॥

(मनु० २। १४०)

जो ब्राह्मण शिष्य का उपनयन कराके वेद-को कल्प और रहस्य आदि के साथ पढ़ाता है वही आचार्य्य कहलाता है।

ऐसा तो शायद ही कोई मनुष्य हो जो ग्रह्मसूत्रों में भी यज्ञोपवीत संस्कार के प्रतिपादन का निषेद करे क्योंकि यह संस्कार होता ही गृह्य-सूत्रों में दिये हुये विधि के अनुसार है। आश्वलायन गृह्य-सूत्र में लिखा है कि "अष्टमें वर्षे ब्राह्मण मुपनयेद् गर्भाष्टमेवा। एकादशे क्षत्रियं। द्वादशे वैश्यम्।" (आश्व० गृ० १। १९)

अर्थात् ब्राह्मण का यज्ञोपवीत् संस्कार आठवें वर्ष या गर्भ के आठवें वर्ष करे ग्यारहवें वर्ष क्षत्रिय का और बारहवें वर्ष वैश्य का।

आपस्तम्बधर्मसूत्र में लिखा है:—

उपनयनं विद्यार्थस्यश्रु तितः संस्कारः।

(आपस्तम्ब प्र० १। पा०)

अर्थात विद्या के इच्छुक का वैदिक संस्कार उपनयन है। यहां "श्रु तितः" शब्द पड़ा हुआ है। इससे विदित होता है कि आपस्तम्ब के मतानुसार वेदों में भी यज्ञोपवीत संस्कार की विधि है। आपस्तम्ब ने किस वेद मंत्र के आधार पर ऐसा कहा यह कहना कठिन है क्योंकि प्रचीन काल में जब वेदों का पठन पाठन भली भांति प्रचरित था सभी जानते थे कि अमुक वेद मंत्र अमुक बात का प्रतिपादन करता है।

गोभिलीय गृह्यसूत्र तो विस्तार के साथ देता है:—

दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य शिरोऽवधाय सव्येंऽसे प्रतिष्ठापयति । दीक्षणं कक्षमन्वलम्ब्य भव त्येवं यज्ञोपवीती भवति।

(गो० गृ० प्रपा० १, करिडका २, मंत्र २)

अर्थात् दाहिनी भुजा को उठाकर शिर के ऊपर से बायें कन्धे पर, दाहिनी बग़ल में होकर जनेऊ डाला जाता है।

यह तो हुआ उन लोगों के लिये जो कहते फिरते हैं कि वेदादि शास्त्रों में यज्ञोपवीत संस्कार का ढकोसला नहीं है, यह पीछे के लोगों ने मिला दिया है।

अब यज्ञोपवीत का उपयोग संक्षेपतः लिखा जाता है। प्रत्येक संस्कार आन्तरिक शुद्धि का एक वाह्यचिह्न है। इसमें आध्यात्मिक और आधिभौतिक दोनों ही कृत्य होते हैं। वाह्य कृत्य आत्मिक उन्नति के लिये होते हैं। परन्तु वाह्य कृत्य या वाह्य चिह्न व्यर्थ नहीं होते। जिस प्रकार शारीरिक स्वास्थ्य पर शरीर की त्वचा और उसके सौन्दर्य का भी प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार संस्कार की क्रियाओं का है। इन संस्कारों में केवल यह देखना होता है कि व्यर्थ का आडम्बर तो नहीं है और इतना कठिन तो नहीं है कि उपयोग करने में समय या धन अधिक व्यय हो और उसके अनुकूल फल निकले।

वैदिक ग्रन्थों में लिखा है कि मनुष्य उत्पन्न ही ऋणी होता है। प्रत्येक० को देव ऋण, ऋषि ऋण और पितृ-ऋण चुकाने पड़ते हैं। ऋणों की यह वार्त्ता ढकोसला नहीं है। आज कल राजनीति के शब्दों में कहा जाता है कि मातृ-भूमि का हम पर ऋण है क्योंकि उसी के जल वायु से हमारा शरीर बना है। यह ऋणों का केवल भौतिक अङ्ग (Material aspect) है। देव कहते ही जल-वायु को हैं। परन्तु इसके अतिरिक्त माता, पिता के भी तो हम ऋणी हैं जिन्होंने हमको जना और पाला! इसके बाद ऋषियों की कृपा से ही हम अपनी प्राचीन भाषा, प्राचीन सभ्यता और प्राचीन संस्कृति को प्राप्त कर सके। इसलिये ऋणों का आध्यात्मिक रूप ऋषि-ऋण है। इन ऋणों को चुकाने के प्रयत्न को ही वेदों में व्रत बताया गया है। नीचे के ऋग्वेदीय मंत्र में आर्य्य और दस्यु की पहचान की गई है।

विजानी ह्यार्यान् ये च दस्यवो।
बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान ॥
(ऋ० १।५१।८)

अर्थात् हे राजन् तुम शासन के हेतु जानो कि आर्य कौन हैं और अव्रत (व्रत-रहित) दस्यु कौन हैं।

आर्य्य वह है जो सव्रत है। दस्यु वह है जो अव्रत है। जो ऋणी होता हुआ ऋण को स्वीकार नहीं करता वही अव्रत है। आज कल यदि कोई कहे कि भारत माता का हमारे ऊपर क्या ऋण है? हम उसके उद्धार के लिये क्यों यत्न करें। तो आप क्या कहेंगे? यही न कि यह धूर्त्त है विश्वासघाती है, देश शत्रु है! भारत माता का कपूत है। वेद इन्हीं भावों को 'दस्यु' शब्द से प्रकट करते हैं। जो अपने दायित्व को समझ कर उसके चुकाने में दत्त चित्त है वही आर्य्य है। इस दत्त-चित्तता का व्रत मनुष्य को आरम्भ में ही लेना होता है। कोई योग्य माता पिता नहीं चाहते कि उनकी सन्तान दस्यु हो। इसलिये आरम्भ से ही आर्य्यत्व का बीज बोया जाता है। आर्य्यत्व का अर्थ ही दायित्व है। दायित्व आर्य्यत्व है आर्य्यत्व दायित्व है। इस दायित्व का व्रत दिलाने के समय ही बालक को तीन धागों का जनेऊ पहनाया जाता है, जिसको वेदों ने यज्ञ का महान् साधन बताया है (ऋ० १०।५७ २) यह त्रिवृत्त तन्तु या तीन धागों का जनेऊ बालक को उसके तीन ऋणों की याद दिलाता है और नित्य प्रति उसके कान में घोषणा करता है कि अपने दायित्व पर ध्यान रक्खो।

आज कल बिल्लों और बैजों (badges) का बड़ा रिवाज है। यदि तुम बालचर हो तो तुमको अमुक प्रकार का बिल्ला लगाना चाहिये। यदि तुम स्वयंसेवक हो तो अमुक प्रकार का पट्टा

गले में डालना चाहिये। यदि तुम किसी सभा में प्रतिनिधि हो तो तुमको एक चिह्न धारण करना चाहिये। यह सब क्या ढकोसला है? क्या इसका कोई उपयोग नहीं? यदि उपयोग न होता तो न मित्रों को उन पर इतनी श्रद्धा होती और न शत्रुओं को इतना विरोध? जिस प्रकार प्राचीनकाल में लोग मरना पसन्द करते थे परन्तु जनेऊ तुड़वाना सहन न कर सकते थे उसी प्रकार आज भी लोग अपनी अपनी पार्टी के वाह्य चिह्नों की रक्षा प्राणों को संकट में डाल कर कर रहे हैं। परन्तु आश्चर्य यह है कि लोग अपने चिह्नों को आवश्यक और दूसरे के चिह्नों को ढकोसला बतलाते हैं।

यहां यह प्रश्न उठता है कि यह वाह्य चिह्न तीन भागों का जनेऊ ही क्यों हो? परन्तु एक बात पर दृष्टि रखिये। भारतीय प्राचीन संस्कृति का आदर्श सरलता भी है। क्या जनेऊ से अधिक सरल और सुगम चिह्न भी कोई हो सकता है। कितने बिल्ले हैं वे सब जनेऊ से अधिक आडंबर रखते हैं। इतना सरल चिह्न ध्यान में भी नहीं आ सकता। एक सज्जन ने एक पत्र में लिखा था कि यदि जनेऊ वाह्य चिह्न है तो लोग उसे वस्त्रों के ऊपर क्यों नहीं पहनते। परन्तु उन महाशय ने गहरी दृष्टि से नहीं देखा जो बिल्ले कपड़ों के ऊपर लगाये जाते हैं उनका प्रभाव मनुष्य के आन्तरिक जीवन पर नहीं पड़ता। जनेऊ केवल दूसरों को दिखाने का ही चिह्न तो नहीं है। यह तो मनुष्य को सोते जागते उस के दायित्व को बताने के लिये है। मनुष्य कोट या कुर्त्ता सदा ही नहीं पहन सकता। परन्तु जनेऊ तो उसे नित्य ही पहने रहना चाहिये। क्या जनेऊ से भी सरल कोई चिह्न आविष्कृत हो सकता है जो इन सब बातों का बोध भी करता हो।

कुछ लोग कहेंगे कि क्या जो जनेऊ धारण करता है वह स्वयं ही आर्य्य और श्रेष्ठ बन जाता है। इसका उत्तर यह है कि वाह्य चिह्न तो केवल वाह्य चिह्न ही हैं। किसी वाह्य चिह्न में यह शक्ति नहीं कि वह किसी मनुष्य को किसी विशेष कार्य्य के करने के लिये उद्यत कर सकें। क्या यूनीवर्सिटी की गाउन किसी को ग्रेजुएट बना सकती है? फिर भी गाऊन आवश्यक है। यदि मनुष्य समाज जनेऊ के नियमों का पालन करे और करावे तो अवश्य ही जनेऊ धारी श्रेष्ठ बन सकता है। अन्य सब चिह्नों के समान जनेऊ के लिये भी सामाजिक पोषण (Social sanction) आवश्यक है। यदि जनेऊ धारण करने वाले को जनेऊ का मूल्य बताया जाय और यदि समाज जनेऊ का आदर करे तो अवश्य ही यज्ञोपवीत से लोगों का कल्याण हो सकता

है। यह तो सृष्टि की आदि से अब तक किसी ने नहीं माना कि तीन धागे डाल लिये और मनुष्य का मन शुद्ध हो गया।

क्या यज्ञोपवीत न धारण करने से हानि भी है ? हां है। वाह्य चिह्न सिद्ध-पुरुषों के लिये नहीं होते। परन्तु असिद्धों के लिये अवश्य होते हैं। जो ऋषि, मुनि, परिव्राजक और सच्चे सन्यासी हैं वह तो वाह्य चिह्नों की सीमा को अतीत कर चुके। वह ऐसे पद पर पहुंच चुके जहाँ जनेऊ आदि की आवश्यकता नहीं परन्तु जो अभी उस पद के इधर हैं उनको जनेऊ न पहनने से हानि ही हानि है। उनके लिये तीन ही बातें हैं या तो जनेऊ धारण करें। या अन्य कोई वाह्य चिह्न जनेऊ के सदृश या उसका स्थानापन्न बनावें या विना वाह्य चिह्न के रहें। तीसरी बात से तो कुछ लाभ नहीं। वाह्य चिह्नों की आवश्यकता तो सहस्रों प्रकार के चिह्नों के प्रचरित हो जाने से ही प्रतीत होती है। परन्तु दूसरी बात भी उपयुक्त सिद्ध नहीं हुई। अब तक कोई ऐसा चिह्न निकाला नहीं गया जो जनेऊ की बराबरी कर सकता। इसके अतिरिक्त जनेऊ की अति-प्राचीनता और इसका सारगर्भित इतिहास ही इसके गौरव के लिये पर्य्याप्त है। जिस चिह्न के साथ याज्ञवल्क्य और आसुरि, अङ्गिरा और शौनक, कणाद, कपिल और पतंजलि, शंकर, और रामानुज आदि आदि महात्माओं की स्मृति सम्बद्ध हो उसका तिरस्कार कैसे उचित हो सकता है। लोग आज गांधी टोपी का सम्मान करते हैं। क्यों ? क्या टोपी मात्र में कुछ रक्खा है ? टोपी तो गांधी जी से बहुत पहले प्रचलित थी। परन्तु आजकल इस टोपी का केवल इसलिये मान है कि महात्मा गांधी के सिर पर शोभा पाती रही है। इस टोपी में तो कोई दीक्षा का भी चिह्न नहीं है। परन्तु यज्ञोपवीत तो व्रत और दीक्षा का चिह्न है। ऐसी वस्तु की उपयोगिता में कुछ सन्देह नहीं हो सकता।

कुछ लोग जनेऊ को इस लिये घृणा की दृष्टि से देखते हैं। कि वह शूद्र और द्विज का भेदक-चिह्न है। आज कल के साम्यवादी युग में इस प्रकार के भेद रखना उपयुक्त नहीं। परन्तु वह लोग कुछ विचारें तो सही। क्या ग्रेजुएट का चोला ग्रेजुएट और नौन-ग्रेजुएट (Non-graduate) में भेद नहीं करता ? क्या स्काउट की वर्दी स्काउट और नौन-स्काउट का भेदक चिह्न नहीं है। चिह्न तो सभी भेदक होते हैं। यही तो चिह्न का लक्षण है। चिह्न तो तभी तक चिह्न है जब तक वह भेद कर सके। क्या आप चाहते हैं कि श्रेष्ठ और कुत्सित, विद्वान् और मूर्ख, आर्य्य और दस्यु में कोई भेद ही न रहे ? यदि आप थोड़ी देर न्याय पूर्वक बिचार करेंगे तो

आप को यह बात अनुचित प्रतीत होगी।

हाँ आप एक बात कह सकते हैं। वह यह कि कोई योग्य पुरुष या स्त्री यज्ञोपवीत से वंचित न रक्खी जाय। यह ठीक है। आप प्रत्येक विद्यार्थी को जो ब्रह्मचर्य और विद्याध्ययन का व्रत करना चाहता है यज्ञोपवीत दीजिये। यदि किसी युग में जन्म और कुल का ढकोसला लगा कर जनेऊ का प्रयोग संकुचित् कर दिया गया तो आप इस अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाइये। न कि जनेऊ के विरुद्ध।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या स्त्री और शूद्रों के लिये भी जनेऊ की आज्ञा है ? इसका उत्तर यह है कि स्त्रियाँ तो पहले बिना किसी बाधा कि जनेऊ पहना करती थीं। ऋण की जो उपर्युक्त बात पुरुषों पर लागू होती है वही स्त्रियों पर भी। वह भी तो देव ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण से ऋणी हैं। उनके लिये भी तो यज्ञ करना, वेदादि विद्या पढ़ना और श्रेष्ट बनना आवश्यक है, इसके अतिरिक्त प्रमाण भी हैं जिनमें से कुछ नीचे लिखे जाते हैं :—

(१) कादम्बरी में महाश्वेता के लिये लिखा है :—

ब्रह्म सूत्रेण पवित्रीकृतकायाम्

अर्थात् वह शरीर पर पवित्र ब्रह्म-सूत्र या जनेऊ धारण किये हुये थी।

(२) तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनं वेदाध्ययनं स्वगृहे भिक्षाचर्या इति

(हारीतस्मृति २१। १३)

अर्थात् ब्रह्मवादिनी स्त्रियों के लिये उपनयन, वेदाध्ययन और अपने घर में भिक्षाचर्या विहित है।

(३) स्त्रिय उपनीता अनुपनीताश्च।

(पारस्कर गृह्य सूत्र)

अर्थात् स्त्रियों के यज्ञोपवीत होते भी हैं और नहीं भी होते।

(४) प्रावृतां यज्ञोपवीतिनीमभ्युदानयन् जपेत् 'सोमोददद् गन्धर्वायेति।'

अर्थात् यज्ञोपवीत धारण करने वाली कन्या को दान करके 'सोमोददद्' वाला मन्त्र जपे।

(५) पुराकल्पे कुमारीणां मौञ्जी बन्धनमिष्यते। अध्यापनं च वेदानां सावित्री वचनं तथा।

—यमस्मृति (पाराशरमाधव)

अर्थात् पहले कल्प में कुमारियों का जनेऊ तथा मौञ्जीबन्धन होता था। उनको वेद भी पढ़ाया जाता था। और गायत्री भी सिखाई जाती थी। स्त्रियाँ और शूद्र एक कोटि में नहीं आ सकते। जिस प्रकार पुरुष सव्रत और अव्रत हो सकते हैं इसी प्रकार स्त्रियां भी सव्रता और अव्रता या आर्या और अनार्या

हो सकती हैं। जो पुरुष या स्त्री व्रत लेना ही नहीं चाहते या ऋणों को चुकाने का दायित्व अनुभव करने में असमर्थ हैं उनको यज्ञोपवीत देने का प्रश्न ही नहीं उठता! चाहे वह ब्राह्मण कुलोत्पन्न हों चाहे शूद्र-कुलोत्पन्न। परन्तु जो कर्तव्य पाल सकते हैं उनको यज्ञोपवीत का पूर्ण अधिकार है। यों तो ब्राह्मण कुलोत्पन्न पागल या ऐसे रोगी को जो ब्रह्मचर्य्यव्रत नहीं ले सकता जनेऊ का कोई अधिकार नहीं है। यदि हम समझ लें कि पहले वर्ण गुणकर्म और स्वभाव के अनुसार होते थे न कि जन्म के तो अधिकार अनाधिकार का झगड़ा निबट जाता है। अब एक बात शेष रह जाती है। क्या यज्ञोपवीत संस्कार के समान अन्य धर्मों में भी कोई संस्कार होता है? ईसाई, मुसल्मान आदि छोटे बड़े सभी धर्मों में कोई न कोई क्रिया ऐसी की जाती है जिससे मनुष्य उस धर्म सम्बंधी कृत्यों के करने का अधिकारी हो जाता है। परन्तु पार्सी धर्म में जो इन सब की अपेक्षा वेदों से मिलता जुलता और निकटतम है यज्ञोपवीत के समान ही एक संस्कार होता है, जिसको 'नवजोत' संस्कार कहते हैं। यह बालक के सातवें वर्ष होता है और अधिक से अधिक अवधि १५ वर्ष की है। इसमें दो वस्तुयें दी जाती हैं एक 'सुदरेह' जो श्वेत वस्त्र का कुर्त्ता सा होता है। इसके गले के सामने एक गांठ होती है जिसे उनकी भाषा में "कीस्से ये केर्फ़े" या 'सवाब नी कोथरी' (पुण्य की थैली) कहते हैं। दूसरी "कुस्ती" है जो कमर बन्द के समान एक चीज़ है। यह वैदिक मोञ्जी बंधन के सदृश होती है। इस नवजोत संस्कार के पश्चात् मनुष्य जरथुस्ती धर्म के कृत्यों का अधिकारी हो जाता है। यह नवजोत संस्कार बहुत सी बातों में वैदिक उपनयन से मिलता जुलता है। परन्तु जो सरलता उपनयन में है वह 'नवजोत' में नहीं।